बदलते शिक्षा मूल्य में वैश्वीकरण का प्रभाव

डॉ0 **मंजू कुलश्रेष्ठ** एसोसियेट प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग डी.जी.पी.जी.
कालेज कानपुर

अभी कोई एक दशक पहले वैश्वीकरण की कोई चर्चा न हमारे देश में न ही विश्व में थी। आज अर्थव्यवस्था, राजनीति, व्यापार और संचार में वैश्वीकरण सबकी जुबान पर है। अब अधिकांश लोग इस इस सोच में है कि ''एक दुनिया'' में रह रहे हैं। अब व्यक्ति तथा समूह ''अन्तनिर्भरता'' के ऐसे जाल में है, जिससे बच नहीं सकता। वैश्वीकरण विभिन्न लोगों, क्षेत्रों और देशों की ''अन्तनिर्भरता'' है जिसकी व्यापकता सारी दुनिया में है। ''पूँजीवाद'' ने ''प्रजातांत्रिक'' व्यवस्था के अधिकतम सीखता है। आाधुनिक समय के वैश्वीकरण की प्रासांगिकता हाल के कुछ वर्षों में बहुत अधिक बढ़ गयी है। उदारीकरण, निजीकरण भी इसी वैश्वीकरण की उपज है। अब पूँजीवाद जो देश में है, दुनिया भर में पहुँच सकता है। उदाहरण स्वरूप अमेरिका या जापान की कम्पनियाँ भारत, पाकिस्तान आदि दक्षिण एशिया के देशों में फैल गयी है। किसी देश का पूँजीपति अपनी पूँजी का विनियोग अपने देश से बाहर सहजता से कर सकता हैं इसका मतलब हुआ कि वैश्वीकरण ने स्थानीय उद्योग धंधों को अर्न्तराष्ट्रीय बना दिया है।

वैश्वीकरण का सीधा अर्थ है कि विश्व बाजारवाद के आर्थिक नियम और सिद्धान्त/वैश्ख्वीकरण मुक्त अर्थव्यवस्था से जुड़ा है परन्तु इसका प्रभाव सभी क्षेत्रों में देखने को मिलता है।

शिक्षा को वैश्वीकरण के अन्तर्गत समझना निश्चित रूप से वैश्वीकरण की असली दिशा को समझने के लिए प्रेरित होना है क्योंकि वैश्वीकरण वर्तमान समय के व्यापारिक माहौल की ऐसी अवधारणा है जो पूरे विश्व को ''ग्लोबल विलेज'' बनाने की बात करती है। खासकर बाजार की ही नीतियाँ सभी स्थानों पर लागू होती हैं और हर समाज के प्रत्येक क्षेत्र को वैश्वीकरण अपने अंदर समेट लेता है, चाहे वह शिक्षा ही क्यों न हो। प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी 28 दिसम्बर 2002 को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्वर्ण जयंती समारोह को संबोधित करते हुए कहते हैं कि 'वैश्वीकरण' के इस युग में शिक्षा को एक बिकाऊ ब्रांड के रूप में विकसित किये जाने पर बल दिया गया हैं आज शिक्षा का बाजारीकरण और निजीकरण कर देने की तमाम बातें चल रही हैं तो क्या शिक्षा बाजार की वस्तु हो जायेगी? और यदि ऐसा संभव हुआ तो निश्चितरूप से विद्यालय दुकान बन जायेंगे। और इन सभी की नकेल किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी के हाथ में होगी।

शिक्षा बेहद मंहगी कर दी गई है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अब स्पष्ट है कि केवल पैसे वाले ही प्रवेश पा सकेंगे। शिक्षा को बिकाऊ ब्रांड तथा रोजगारोन्मुखी होना चाहिए। लेकिन इसके साथ–साथ शिक्षा को छात्रों के व्यक्तित्व को भी निखारना है। सिर्फ शिक्षा का बाजारीकरण कराना या कुशल कारीगर बनाना ही शिक्षा के लिए काफी नहीं है। इसके साथ मनुष्यता भी होनी चाहिए। भारतीय संस्कृति में वैराग लेने वाले व त्याग करने वाले कबीर, सूरदास, आदि संतों को काफी सम्मान दिया गया है। अतः जरूरी है कि हम अपनी शिक्षा में भी ऐसे पाठ्यक्रमों को शामिल करें। जिससे कि छात्रों में नेतिकता को बढ़ावा मिले, इसलिए शिक्षा में गुणवत्ता का होना बड़ा जरूरी है।

ठेके पर अध्यापन :

आज अध्यापन शिक्षा को ठेके पर दिये जाने की व्यवस्था हो रही है जो भले ही सैद्धान्तिक रूप से गलत हो पर समय के मुताबिक उचित प्रतीत होता है क्योंकि अगर हम वर्तमान में शिक्षा व्यवस्था के नींव में जाएं तो मौजूदा स्थिति में बगैर ठोस कदम उठाये कोई बदलाव हो, ऐसा नहीं लगता। हमें इस बात पर अवश्य विचार करना चाहिए कि आज शिक्षकों को ठेके पर लेने संबंधी प्रस्ताव करने की जरूरत ही क्यों पड़ी? यह सवाल बहुत अहम है, क्योंकि हमारी मौजूदा शिक्षा प्रणाली कई प्रकार की कुप्रवत्तियों की चपेट में है। इसे हम दो तरह से व्यक्त कर सकते हैं, पहला – आज के शिक्षक गुरू नहीं रहे, वे अब वेतन भोगी कर्मचारी हो गये हैं तथा गुरु – शिष्य परम्परा से हटकर, वे शिक्षा को व्यापार के रूप में बदल देते हैं। दूसरा, अगर किसी संस्थान में कर्मचारी ठीक से काम नहीं करता है, लापरवाह है, तो वह संस्थान के लिए अनुपयुक्त है, ऐसे में संस्थान उसके खिलाफ कुछ नहीं करता, यह स्थिति ठीक नहीं है। ऐसे में स्थाई कर्मचारी किसी भी संस्थान के लिए स्थाई बोझ बन जाते हैं। हमारे यहाँ शिक्षा क्षेत्र के साथ–साथ कई अन्य क्षेत्रों में भी यही स्थिति है। अमेरिका या दूसरे विकसित स्तर पर नहीं है तो उस अविलम्ब ही **''पिंक स्लिप''** पकड़ा दी जाती है, जिसका मतलब है कि उसका रोजगार समाप्त कर दिया जाता है। विकसित देशों में लेक्चरर से प्रोफेसर होने के लिए विभिन्न मापदण्ड अपनाया जाता है।

जबकि हमारे यहाँ इससे एक दम विपरीत है। यहाँ शिक्षक को पॉलिटिक्स करने की पूरी छूट है। ठेके व्यवस्था में केवल नौकरी समापत करने का ही पहलू नहीं बल्कि इसमें शिक्षक की उत्पादकता और गुणवत्ता के आधार पर प्रोन्नति करने का भी अधिकार है। चीन में भी ठेके पर व्यवस्था के चलते ही हमारे यहाँ की उत्पादकता की तुलना में चीन में उत्पादकता का स्तर तीन गुणा से अधिक हुआ है।

आज के समाज में फैली दिशाहीनता, जिससे व्यक्ति के नैतिक मूल्यों का जो अवमूल्यन हुआ है, उसने शिक्षकों की भूमिका और हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति को कटघरे में खड़ा कर दिया है। काल चक्र ने अन्य क्षेत्रों की भाँति शिक्षा के क्षेत्र में भी समस्त मर्यादाओं एवं मान्यताओं की इति श्री कर दी है। शिक्षा व शिक्षक बिकाऊ हो गये हैं, शिक्षालय विवाह एवं नौकरी का वेटिंग रूम बनकर रह गए हैं। वैश्वीकरण व भौतिकवाद के सार्वभौम प्रभाव के कारण जीवन स्तर की मृगमरीचिका ने शिक्षक को कर्त्तव्य विमुख बना दिया है।

आजादी के बाद जिस तरह के आदर्शवाद को लेकर हम चले थे, आज वह धूमिल हो गया है। जैसे **''नेहरू और गाँधी** तथा **राधाकृष्णन''** का मानना था कि शिक्षक ही एक सभ्य व शिक्षित समाज का निर्माण करता है, माता–पिता के बाद शिक्षक ही बच्चों के भीतर देश प्रेम, सेवा, त्याग व समर्पण की भावना का संचार करता है, भारतीय परम्परा में अपने ज्ञान, प्रज्ञा, अपरिग्रह व आदर्श आचरण के द्वारा समाज में एक बहुत ही सकारात्मक भूमिका निभाता है परन्तु आज तेजी से बदलती दुनिया में छात्रों को नई दिशा के बदले निजी स्वार्थों ने शिक्षा को बाजार की वस्तु बना लिया है। विद्यालय में पढ़ाई–लिखाई होती नहीं है, जिससे निर्धन छात्रों को शिक्षा प्राप्त करना और भी कठिन हो गया है। वहीं शिक्षक का व्यक्तिगत आचरण भी छात्रों में कोई आदर्श स्थापित नहीं कर पाता। इस तरह छात्र इनसे कैसे प्रेरणा ले सकते हैं। इस परिस्थिति में ठेके पर अध्यापन उचित प्रतीत होता है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया : छात्र

युवाओं के कच्चे मन पर इलेक्ट्रानिक मीडिया का जो प्रभाव पड़ा है इससे एक तरफ तो शिक्षा के प्रति उनकी रुचि कम होती जा रही है तथा मीडिया शिक्षक का स्थान लेती जा रही है। तब विद्यार्थी शिक्षक के पास भला क्यों जाए? इसी कारण छात्र तेजी से अनुशासनहीनता, हिंसा, नशा तथा कम उम्र में यौन संबंध ा जैसी कुप्रवत्तियों के शिकार होते जा रहे हैं। उनके इस बदलते व्यवहार से समाज न केवल अचम्भित है, बल्कि चिन्तित भी है कि कैसे नई पीढ़ी को रास्ता दिखाया जाए? निरंतर बढ़ती जनसंख्या और घटते रोजगार के अवसरों के कारण भी विद्यार्थी वर्ग कुंठित है तथा आज के राजनीतिक प्रभाव और अन्य कारण से भी कुंठित हैं – वे देखते हैं कि कैसे अक्षाम छात्र भी पैसे और राजनीतिक प्रभाव से मन चाहे संस्थानों में नौकरी व दाखिला पा जाते हैं। अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश में उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग में हुए धोखाधड़ी का पर्दाफाश हुआ जिसमें ऐसे–ऐसे अक्षम छात्रों को चुना गया था जो भारत के प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति का नाम तक नहीं जानते थे। ऐसे में मेहनती और होनहार विद्यार्थी का कुंठित होना तथा कैरियर के प्रति सजग होना आम बात है। इसके लिए परिवार, समाज व शिक्षक वर्ग समान रूप से जिम्मेदार है। आज शिक्षा का अर्थ मात्र सूचनाओं का सम्प्रेषण होकर रह गया है, प्रश्न और परीक्षा सब कुछ निर्धारित पाठ्यक्रम में सीमित होकर रह गये हैं। एक विचारक ने व्यंग्यात्मक शैली में शिक्षा के स्वरूप को लक्ष्य करके लिखा है कि – अध्यापकों के लेक्चर नोट्स, नोट बुकों तक सीमित रहते हैं, मस्तिष्क तक पहुँचने–पहुँचाने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। वैश्वीकरण के इस दौर में अगले दस वर्षों में इतना बदल जायेगा कि उसे पहचान पाना मुश्किल हो जायेगा। अगले कुछ वर्षों में आज की नीतियाँ, रणनीतियाँ, कार्यक्रम और प्राथमिकताएँ तेजी से बदल जायेंगी। क्योंकि परिवर्तन की गति इतनी तेज है कि शिक्षा सहित जीवन के किसी क्षेत्र में एक स्पष्ट चित्र बना पाना असंभव है। आने वाले वर्षों में भारत की आबादी कई श्रेणियों में स्पष्ट रूप से विभाजित होगी। गाँवों और आदिवासी इलाकों से शहरी और मेट्रोपॉलिटन इलाकों की ओर लोगों के भागने की गति बढ़ेगी। जिससे इन क्षेत्रों पर दबाव काफी बढ़ जायेगा। ग्रामीण और आदिवासी लोग अपनी पहचान बनाए रखने की ज्यादा सशक्त इच्छा व्यक्त करेंगे। आज समाज में जिस तरह टकराव व तनाव व्याप्त है, उससे शांति व सामाजिक संबद्धता के लिए शिक्षा की आवश्यकता पर जोर होगा। शांति संबंधी शिक्षा अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति का मुख्य सरोकार होगी। शिक्षा जागरूकता पैदा करती है तथा हर मनुष्य को सूचना प्रदान करके परिवर्तन के प्रति अनुकूलन पैदा करने तथा इंसान को अपनी क्षमता का अहसास कराने का उपकरण प्रदान करती है। आने वाले समय में सूचना को ज्ञान में बदलने में स्कूल की भूमिका और ज्ञान का उपयोग करने की क्षमता प्राप्त करने की आवश्यकता अहम हो जायेगी। शिक्षकों की तैयारी के लिए शिक्षाशास्त्र को बदलना होगा, क्योंकि मौजूदा शिक्षा महज सूचना के स्थानान्तरण पर निर्भर है, भविष्य का शिक्षा शास्त्र सूचनाओं को स्थानान्तरित करने की प्रक्रिया होगी, जो किसी भी व्यक्ति के जीवन के ज्ञान में इजाफा कर सकें।

ाण्। आने वाले समय में शिक्षकों को बहुत बड़ा ही उत्तरदायित्व सौंपा जाने वाला है। इस परिस्थिति में शिक्षकों को अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन हेतु तैयार रहना चाहिए। आज वैश्वीकरण और उदारीकरण की नीतियाँ आर्थिक स्थिति व संस्कृति को भ्रष्ट करने में अपना योगदान दे रही हैं। जब तक हमारी जनता में अपनी संस्कृति पर अटूट विश्वास नहीं होगा तब तक इन आर्थिक और सांस्कृतिक आक्रमणों का प्रतिरोध ा करने की क्षमता का सही रूप से विकास नहीं हो सकेगा। और ये सब परिवार, समाज व शिक्षक के माध यम से ही हो सकता है।

अमर्त्यसेन और शिक्षा

''अमर्त्य सेन'' कहते हैं कि भारत में शिक्षा पर सरकारी खर्च को बढ़ाया जाना चाहिए। यदि लोग शिक्षित होंगे तो इनके विकल्पों का विस्तार होगा। उन्हें अनेक कार्यों के बारे में जानकारी होगी। यह सही है कि शिक्षा से कुछ कार्यों की सम्भावनाओं का रास्ता खुलता है परन्तु उन्हें खोलने से पहले हमें निर्णय लेना होगा कि इन विकल्पों का विस्तार सार्थक होगा या नहीं। यह निर्णय सरकार या समाज द्वारा न होकर व्यक्ति पर ही छोड़ देना चाहिए। यदि किसान को पढ़ लिखकर किसान ही रहना है तथा स्कूली पढ़ाई से मिलने वाली उपयोगी जानकारी उसे बिना स्कूल गये ही मिल सकती है तो उसे पढ़ने की क्या जरूरत है? यदि स्कूली शिक्षा के स्थान पर सरकार उसे बेहतर सिंचाई के संसाधन दे तो सम्भवतः उसका कल्याण होगा। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने कहा था कि ''एक सुसंस्कृत अशिक्षित व्यक्ति, एक शिक्षित व्यक्ति से बेहतर है''।

यहाँ संस्कृति का तात्पर्य उस ज्ञान से है जो उसे सही चुनाव करने की क्षमता प्रदान करता है। इसी संस्कृति के आधार पर वह चयन करता है कि स्कूली शिक्षा वांछनीय है या नहीं अतः संस्कृति स्कूली शिक्षा के पहले आती है। लेकिन यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि समाज यह कैसे तय करे कि व्यक्ति की अवचेतन इच्छा क्या है? वास्तव में समाज इसे तय कर ही नहीं सकता, परन्तु समाज यह कर सकता है कि व्यक्ति पर किसी विशेष प्रकार की शिक्षा आरोपित न करें, व्यक्ति को स्वयं तय करने दें कि वह किस प्रकार की और कितनी शिक्षा चाहता है।

हमारे यहाँ व्यापक बेरोजगारी है तो सरकार का पहला कर्त्तव्य बनता है कि वह रोजगार उपलब्ध कराये। ऐसी स्थिति में स्वास्थ्य तथा शिक्षा में सरकारी निवेश करना हानिकारक होगा। सेन भी इसे स्वीकार करते हैं। कहते हैं कि **शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, स्कूलों में दोपहर का भोजन, उर्वरक, खाद्यान्न, तेल, बिजली एवं पानी इत्यादि पर आर्थिक सहायता पूर्णतया समाप्त कर देनी चाहिए।**इन क्षेत्रों को बाजार के हवाले छोड़ देना चाहिए। इस पैसे को **''रोजगार का अधिकार''** योजना में लगाना चाहिए। इन रोजगारों को बुनियादी के साथ जोड़ना चाहिए। आम व्यक्ति का कल्याण रोजगार के द्वारा सिद्ध हो, यही सर्वोत्तम है। यदि उसके पास आय होगी तो वह बाजार से शिक्षा तथा स्वास्थ्य खरीद सकेगा, सरकार को चाहिये कि कानून व्यवस्था, न्याय तथा रक्षा पर खर्च बढ़ाये जिससे जनता का आत्म सम्मान बढ़ेगा, आर्थिक विकास भी होगा और हम औद्योगिक देशों की बराबरी भी कर सकेंगे।

यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि शिक्षा व स्वास्थ्य का प्रबंध निजी हाथों में सरकार को सौंपना होगा जबकि नियंत्रण की जिम्मेदारी सरकार को खुद सम्भालनी होगी। इससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार तो होगा ही, शिक्षा रोजगारन्मुख भी होगी। जहाँ तक शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर आर्थिक सहायता की बात है सरकार इनमें सुधार कर पारदर्शिता ला सकती है जिससे कि आर्थिक सहायता के लाभ अक्षम लोग ही उठा सकें न कि सक्षम लोग।

इसका मतलब यह नहीं निकाल लेना चाहिए कि सेन शिक्षा का विरोध करते हैं। बल्कि वे चाहते हैं कि शिक्षा व्यक्ति को उपलब्ध स्वतंत्रता में चयन का सही रास्ता दिखलाये। व्यक्ति अपनी अवचेतन इच्छाओं की पूर्ति के लिए उपलब्ध स्वतंत्रता का उपयोग करे।

अभी भी भारत अमेरिका की तुलना में बौद्धिक सम्पदा के मामले में कम नहीं है। सेन का यह मानना है कि शिक्षा रोजगार–मुखी होनी चाहिए न कि बेकार और यह प्राथमिक स्कूल से ही शुरू होनी चाहिए। वे कहते हैं कि वैश्वीकरण के युग में जहाँ तकनीकी बदलाव हमेशा होता रहता है, ऐसी स्थिति में सरकार नई तकनीकी शिक्षा में दखल दे सकती हैं वो भी जब निजी क्षेत्र इसे पूरा करने में असमर्थ हों। 1950 में भारतीय तकनीक संस्थान (आई.आई.टी.) तथा भारतीय प्रबंधन संस्थान (आई.आई.एम.) की स्थापना की गई वह सही था। उस समय यह जरूरी भी था। किंतु अब जबकि निजी क्षेत्र शिक्षा के क्षेत्र में आ गए हैं तब उसकी जरूरत नहीं है।

निष्कर्ष

सेन भी प्राथमिक शिक्षा पर जोर देते हैं, क्योंकि शिक्षा से व्यक्ति में चेतना जागृत होती है तथा इससे रोजगार मिलने में सहायता मिलती है। लेकिन उनका मानना है कि प्राथमिक शिक्षा पर अधिक व्यय न करके उच्च

शिक्षा या तकनीकी शिक्षा पर व्यय करना चाहिए क्योंकि हमने ऊपर देखा है कि अवसरों की अनुपस्थिति में शिक्षा से जनता हतोत्साहित तथा परेशान होती है। इसीलिए प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा का अनुपात अर्थव्यवस्था में उपस्थित अवसरों के अनुसार होना चाहिए। ताकि व्यक्ति जितनी शिक्षा ग्रहण करें उसके अनुसार उसे रोजगार मिल सके।

भारत के सामने सबसे अहम चुनौती विकसित देशों से समानता हासिल करने की है। उसके लिए प्राथमिक शिक्षा में नहीं, बल्कि उच्च शिक्षा में हमें अधिक निवेश करना होगा। इसका अर्थ यह नहीं मान लेना चाहिए कि उच्च शिक्षा में निवेश सरकार को करना चाहिए। केरल में भी शिक्षा के प्रसार में ऐसी ही नीति अपनायी गई है। जिसका प्रमाण हमारे सामने है कि केरल शिक्षा में भी आगे है व रोजगार देने में भी। इंडियन इंस्टीटयूट ऑफ साइंस के प्रो. एन. बालाकृष्णन भी उच्च शिक्षा में निवेश करने का समर्थन करते हैं। इनका मानना है कि जब तक देश में क्वालिटी शिक्षा की व्यवस्था नहीं होती तब तक हम 'ज्ञान और सूचना' ;ज्ञदवूसमकहम ंदक प्दवितउंजपवदद्ध युग में प्रवेश नहीं कर सकते। उच्च शिक्षा में बिना निवेश किए हम बौद्धिक सम्पदा के पेटेंट कराने में भी पीछे रहेंगे। अभी इन्फार्मेशन टेक्नालॉजी और संचार टेकनोलॉजी के क्षेत्र में अमेरिका की 25 प्रतिशत, यूरोप 11.46 प्रतिशत, चीन 0.65 प्रतिशत तथा भारत 0.25 प्रतिशत की हिस्सेदारी है। उच्च शिक्षा में निवेश करके ही हम पेटेंट में अपनी हिस्सेदारी बढ़ा सकते हैं।

यहाँ यह ध्यान देना होगा कि हम यहाँ प्राथमिक शिक्षा का विरोध नहीं कर रहे हैं। बल्कि हम शिक्षा का रोजगार से संबंध अंकित कर रहे हैं। मूल प्रश्न शिक्षा से मिलने वाले अवसरों का है। बिना रोजगार के क्षमता का विकास व्यक्ति को अपूर्ण छोड़ सकता है। इसलिए शिक्षा नीति को अवसरों से बिना किसी अमीरी–गरीबी, ऊँच–नीच का भेद किये जोड़ना होगा। तब ही देश का आर्थिक विकास भी होगा साथ ही उनमें अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का बोध, स्वावलंबन व निर्णय शक्ति का विकास होगा। राज्य का भी दायित्व बनता है कि सबकों एक समान अवसरों को उपलब्ध कराये।

अन्त में मैं कहना चाहूंगा कि शिक्षा एक मुक्ति प्रदान करने वाली शक्ति होने के साथ–साथ एक विकासमूलक शक्ति भी है जिसके बल पर मनुष्य मात्र भौतिकता से उठकर बौद्धिक और आध्यात्मिक चेतना के उच्चतर स्तरों पर आने की स्थिति में हो जाता है। महान दार्शनिक और संत श्री अरविंद कहते हैं कि – अतीत हमारी नींव है, वर्तमान हमारी सामग्री है और भविष्य हमारा लक्ष्य तथा शिखर है। अतः शिक्षा में गुणवत्ता का होना जरूरी है। यह तब ही मुमकिन है जब सरकारी तंत्र तथा निजी तंत्र से एक साथ मिलकर अपने–अपने हिस्से (निजी तंत्र का प्रबंध व सरकारी तंत्र का नियंत्रण) का कार्य करें।

संदर्भ

- Globalisation and socio-Economic Development (Hemant S. Ahluwalia)
- वैश्वीकरण : चुनौतियाँ और अवसर (सरोज कुमार द्विवेदी)
- Indian Publishers, Distributers, Delhi (2003)
- Adhyayan Publishers Distributors, New Delhi (2008) .
- Colonilization Economic Growth and Human Development
- S.N. Misra, B.K. Sahu) Centre Developmental Studies (Bhubaneswar & Annual Publications Pvt. Ltd., New Delhi (2006) .
- Globalization and Inequality (Raj Kumar Pruthi)
- Alfa Publications, New Delhi (2006)
- विश्व व्यापार संगठन तथा भारती अर्थव्यवस्था (राम नरेश पाण्डेय) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (2004)
- भूमण्डलीयकरण के युग में पूँजीवाद (समीर अमीन)
- अनुवादक (राम कवीन्द्र सिंह) (ग्रंथ शिल्पी, प्रथम हिन्दी संस्करण 2003)